



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2017; 3(2): 76-77

© 2017 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 18-01-2017

Accepted: 19-02-2017

हिमांशु बर्मण

शोधछात्र, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली, भारत।

वैदिक मरुदगण

हिमांशु बर्मण

मरुत् देवता वेद के अन्तरिक्षस्थानीय महत्वपूर्ण देवताओं में से एक हैं। मरुत् देवता का स्वरूप निर्णय करने से पूर्व 'मरुत्' शब्द की व्याकरणिक व्युत्पत्ति का विचार करना अत्यावश्यक है। 'मरुत्' शब्द की निष्पत्ति मर् धातु से प्रतीत होती है। यह धातु मरणार्थक है या दमनार्थक है या फिर रोचनार्थक यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। परन्तु ऋग्वेद के अनुसार मरुतों के वर्णन के संदर्भ में 'रोचन' (चमकना) अर्थ ही ठीक प्रतीत होता है। 'मृग्रोरुति' सूत्र से 'मृङ् प्राणत्यागे' धातु से 'डति' प्रत्यय करने पर 'मरुत्' शब्द बनता है।¹

ऋग्वेद में मरुत् को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मरुतों का एक देवगण है। वेदों में 'गण' शब्द का प्रयोग विशेष मरुतों के लिए ही प्रयोग हुआ है। इनका उल्लेख एकवचन में न होकर सर्वदा बहुवचन में ही हुआ है। इनकी स्तुति स्वतंत्र रूप से 33, इन्द्र के साथ कम से कम 7 और अग्नि तथा पूषा के साथ एक-एक सूक्तों में हुई है। इनकी संख्या के बारे में ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के 96वें सूक्त के आठवें मंत्र में 60 के तीन गुणा अर्थात् 180 का उल्लेख है।² इसके अतिरिक्त किसी दूसरे मंत्र में इनकी संख्या 7 के तीन गुण अर्थात् 21 सदस्यों से भी युक्त मरुत् गण उल्लेख है।³

ऋग्वेद में मरुतों को रुद्र के पुत्र बताया गया है। इस कारण से मरुत् को 'रुद्रियाः' भी कहा गया है।⁴ मरुतों की माता के रूप में 'पृश्नि' का वर्णन आया है। फलतः मरुतों के लिए अनेक बार 'पृश्निमातरः' विशेषण का भी प्रयोग किया गया है।⁵

निरुक्तकार आचार्य यास्क ने मरुत् शब्द त्रिविध व्याख्या प्रस्तुत की है—

“मरुतो मितराविणो वा, मित—रोचिनो वा।

महद् द्रवन्ति इति वा।” (नि. 11/2/1)

अर्थात् ये मरुत् कम शब्द करने वाले या विद्युत रूप से कम ही चमकने वाले या जोर से गति करने वाले होते हैं। यहाँ जो मित् शब्द का प्रयोग किया गया है उसका अर्थ योग्य, अनुरूप या सुश्लिष्ट किया गया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जो उचित रूप से गर्जन करते हैं वे ही मरुत् गण हैं। सायण ने यास्क के निरुक्त से निम्नलिखित व्याख्यायें ग्रहण करके मरुतों को वृष्टि से सम्बद्ध देव बताया है।⁶

1. मित निर्मितमन्तरिक्षं प्राप्य रवन्ति शब्दं कुर्वन्तीति मरुतः।
अर्थात् मरुत् वे हैं जो बने हुए अन्तरिक्ष को प्राप्त कर शब्द करते हैं।
2. “अमित मृशं शब्दकारिणः।” अर्थात्, बहुत अधिक शब्द करने वाले।
3. “मितं स्वैर्निर्मितं मेघं प्राप्य विद्युदात्मना रोचमानाः।” अर्थात् मरुत् स्वयं बनाए गए मेघ को प्राप्त कर बिजली के रूप में चमकते हैं।
4. “महत्यन्तरिक्षे द्रवन्ति।” अर्थात् महान् विशाल अन्तरिक्ष में गति करते हैं।

● मरुतों की विशेषताएँ

ये मरुत् सज्जनों के पास और दुष्टों से अलग रहने में अत्यन्त दृढव्रत होते हैं। अपने सेवा व्रत में रत रहते हुए भी कभी थकान नहीं मानते, स्वयं न भोग करने वाले और दूसरों को भी न देने वाले जनों की हिंसा करके, पर्वतों के समान दृढ होकर सर्वत्र विचरते हुए, पर्वतों के समान सुख सुविधा प्रदान करने वाले पदार्थों को देते रहते हैं। अपने सेवा मार्ग में रुकावट वाले सामान्य (पार्थिव) तथा विशिष्ट (दिव्य) दोनों ही प्रकार के पुराण पन्थी मनुष्यों और संस्थानों को हिला देते हैं।⁷

Correspondence

हिमांशु बर्मण

शोधछात्र, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली, भारत।

● मरुतों के कुछ विशिष्ट गुणों की पुष्टि

(1) मरुत् विद्युत् के अट्टहास से उत्पन्न बताए गए हैं।⁸ बादलों में तीव्र वज्राघात ही विद्युत् का अट्टहास है। जिस प्रकार प्रयोगशाला में 25–30 हजार वोल्ट के विद्युत् आघात से किरणें उत्पन्न हो जाती हैं उसी प्रकार बादलों में लाखों वोल्ट के विद्युत् आघात से किरणें उत्पन्न हो जाती हैं। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि ये किरणें ही मरुत् हैं।

(2) वृत्र आदि के साथ युद्ध में वे इन्द्र की सहायता करते हैं।⁹ और इस कार्य में उनकी शक्ति इन्द्र के समान है। वृत्र का अर्थ होता है आवरण करनेवाला। वृत्र और इन्द्र का युद्ध बादलों में होता है, जहां बादलों का विद्युत् अवरोध ही वृत्र है जो उनमें सब ओर व्याप्त है या उन्हें सब ओर से घेरे हुए हैं। वहाँ ऊर्जा किरणें इन्द्र की सहायता करते हैं। अतः ऊर्जा किरणें ही मरुत् है इसकी पुष्टि होती है।

मरुत् अग्नि का कल्याणकारी रूप किसे सुखा देने वाला नहीं है? इनके ही कारण द्युलोक व स्वर्गलोक प्रकाशित है। यह शक्ति केवलमात्र मरुद् गण की है जो पर्वताकार गैसिल मेघ के द्वारा प्रस्तुत बाधा को सहज ही विदीर्ण कर आगे निकल जाते हैं और परिप्लवित ब्रह्माण्ड रसायन की धूलि के महासमुद्र को सहज में तैर कर पार कर लेते हैं। वरुण के ओजयुक्त समुद्र में प्रवाहित रश्मिवीचियों के तन्तुवाय को भी मरुद्गण युक्ति पूर्वक पार कर जाते। मधुर सोम का कैसे निर्माण होता है, इसे मरुत् गण ही बेहतर जानते हैं क्योंकि इन्होंने सोम रस का विविध रूपों में भरपूर पान किया हुआ है।

मरुतों का आयुध भाला है जिसका वेद में कई स्थानों पर उल्लेख हुआ है।¹⁰ इन्हें ऋष्टि विद्युत् विशेषण दिया गया है जिससे प्रकट होता है कि उनके भाले विद्युत् के समान तीक्ष्ण हैं।

मरुतों के बाह्य स्वरूप को देखा जाए तो वे आभरणों से सजे हुए हैं ऐसा वेद में कहा गया है। वे दीप्ति में, गति में, मालाओं में, भूषणों में, कंगनों में, रथों में और धनुषों में आश्रय लेते हैं।

मरुद्गण के विषय में वेदों में जो भी विवरण प्राप्त होता है, उसके अनुसार उनके स्वरूप और विकास का एक त्रिविध रूप देखने में आता है—

1. एक विशिष्ट व्योमचारी ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के रूप में।
2. देवता या क्षेत्रधारी सुदानक के रूप में।
3. अन्तरिक्ष विज्ञान का उपयोग करने वाली एक विशिष्ट प्रजाति के रूप में।

इस प्रकार से 'मरुद्गण' सम्बन्धी पच्छन्न जानकारी के साथ-साथ उनका क्रमिक विकास के बारे में विशद जानकारी वेदों में मिलती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. उणादि-सूत्र, 1.4
2. त्रिः षष्टिस्ता मरुतो वावृधाना उस्त्राइव राशर्यो यज्ञियासः। उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम। (ऋ. 8. 96.8)
3. शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधेरुग्रेभिरीयसे। अपूरषध्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूरसत्वाभिः॥ (ऋ. 1. 133.6)
4. सत्यं त्वेषा अववन्तो धन्वञ् चिद् आ रुद्रियासः। मिहं कृण्वन्त्यवाताम्॥ (ऋ. 1.38. 7)
5. यद् यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन। स्तोता वो अमृतः स्यात्। (ऋ. 1.38.4)
6. आ विद्युन्मद्भिर् मरुतः स्वकै रथेभिर् यात ऋष्टिमद्भिर् अश्वपर्णैः। आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता समायाः॥ (ऋ. 1.88.1)
7. युवानो रुद्रा अजरा अभोश्घनो ववक्षुरधिगावः पर्वता इव। दलहा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्रच्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना॥ (ऋ. 1.64.3)

8. हस्काराद् विद्युतस् पर्यतो जाता अवन्तु नः। मरुतो मृळ्यन्तु नः॥ (ऋ. 1.23.12)
9. समानो अध्वा स्वस्रोर् अनन्तस् तम् अन्यान्या चरतो देवशिष्टे। न मेथेत न तस्यतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरुपे॥ (ऋ. 1.113.3)
10. को वोऽन्तर् मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया। धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो नैतशः॥ (ऋ. 1.168. 5)